डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय की सांस्कृतिक चेतना

Dr. Dayakrishan Vijayvargiya Ki Sanskritik Chetna

शोंधार्थी

पवन कुमार बुनकर

हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

Pawan Kumar Bunker
Research Scholar
Hindi Department, Rajasthan University, Jaipur

बहुमुखी व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के धनी वरिष्ठ साहित्यकार डा. दयाकृष्ण विजयवर्गीय एक सफल कथाकार है, जिनके व्यक्तित्व का निर्माण सांस्कृतिक आधार भूमि एवं उनके जीवन परिवेश के आधार पर जुडा हुआ है

"उनका पारिवारिक परिवेश, शिक्षा, कर्म–क्षेत्र, उनकी रचनाओ को सांस्कृतिक दिशा देने में एक अहम भूमिका निभाते है।"[1] उन्होने अनेक राष्ट्रीय सांस्कृतिक नेताओ और पथ प्रदर्शको की स्तुति करते हुए देश के जनमानस को राष्ट्रीय कार्यो में संलग्न हो जाने की दिव्य प्रेरणा दी है। डा. विजय ने कथा साहित्य में जिस सांस्कृतिक चेतना का संचार हुआ है, उसका रचनातंत्र उन्होने नीजी जीवन एवं व्यक्तित्व का परिणाम है।

डा. विजय आधुनिक काल के उन कथाकारो में से है जिनके जीवन से संबंधित हमारे पास सभी सूचनाए उपलब्ध है। उनके कथा साहित्य में रचना शैली में परिवेश निर्माण में, समाज निर्माण में, पात्र संरचना में, और प्रतिपाद्य में विलक्षणा है। उनके कथा साहित्य में यह विलक्षणता उपन्यासो एवं कहानियों में जाकर उसको लक्ष्य तक पहुँचाती है। उन्होने अपने कथा साहित्य के धरातल पर भारतवर्ष के विभिन्न कालखण्डो की संस्कृति को आधार बनाकर अपना स्वरूप निर्धारण किया है। सामान्य रूप से विजयवर्गीय जी के कथा साहित्य में भारत की इतिहास धारा में सांस्कृतिक चेतना को अनेक विलक्षण स्थितियों से होकर गुजरना पडता है। संस्कृति तथा सांस्कृतिक चेतना का संबंध शरीर एवं आत्मा का संबंध है। संस्कृति के स्थूलरूप में सांस्कृतिक चेतना प्राणवान रहती है। "लेखक ने जहाँ सांस्कृतिक

राष्ट्रवाद की व्याख्या उपस्थित की है, वही संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित करते हुए आज की वर्तमान भारतीय राजनीति की भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के धरातल पर खडा होने की आवश्यकता प्रतिपादित की है।"[2] उसका स्वरूप ब्रह्म के समान है जो वृहणमान होकर एक सुसंस्कृत विश्व का निर्माण करती है तो वह जड होकर संवेदनशील हो जाती है और जीवन में विषमताओ की जननी होती है।

"[3]सांस्कृतिक विकास के क्रम में किसी विशेष अवस्था पर किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह ने सर्वोच्च सत्ता के प्राप्त होने वाले अंतर्ज्ञान, प्रेरणा या रहस्यात्मक अनुभूतियों के द्वारा उच्चतम मूल्यों या विचारों की दृष्टि प्राप्त की। इस दृष्टि ने विशेष सामाजिक परिवेश में कोई वस्तुनिष्ठ मानसिक स्वरूप ग्रहण किया और वह समूह का आदर्श बन गया जिसका बाद में किसी मानसिक तथा भौतिकवादी लक्षणों के रूप में विश्लेषण कर संस्कृति का रूप दिया गया।"[3] संस्कृति के विकास की धारा में गतिशीलता का एक विलक्षण क्रम होता है। संस्कृति की गतिशीलता से मानव जीवन के दो स्वरूप निरन्तर प्रभावित करतें है। मानव जीवन का एक रूप है उसका मूल प्रवृतियों से प्रेरित पाशविक जीवन और दूसरे स्वरूप में मूल्यों पर आधारित उदात्त सामाजिक जीवन। जीवन का यह दूसरा रूप ही सांस्कृतिक चेतना है जो जीवन धारा को सुसंस्कृत बनाती है। मानव जीवन का यह भी सच है कि वैयक्तिक स्तर पर उसे उसकी मूल प्रवृतिया अपनी ओर खींचती है जिससे प्रेरित होकर वह सांस्कृतिक चेतना का विरोधी होकर खडा हो जाता है। यही से संस्कृति की धारा में सांस्कृतिक चेतना का सांस्कृतिक पक्ष दिखाई देता है।

"[4]डा. विजय के कथा साहित्य में उनकी अनेक राष्ट्रीय– सांस्कृतिक किन्तु मूलतः श्रमवादी रचनाए संकलित है। इनके अनेक समीक्षको ने प्रगतिवादी काव्य धारा के संदर्भ में इसका उपयोग अपेक्षित है।[4] दयाकृष्ण विजय भारतीय संस्कृति की धरोहर के रूप में मौजूद साहित्य के गहन पारखी अध्येता है। साहित्य के माध्यम से उन्होने भारतीय संस्कृति के इतिहास की गहरी छानबीन की। संस्कृति के इतिहास की इस छानबीन में वे सांस्कृतिक चेतना को केन्द्र में रखकर चलते है। भारतीय संस्कृति के इतिहास की विचारधारा में वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक संस्कृति इस तरह अपनी दिशाए अपनाती है कि उसमे सांस्कृतिक चेतना का लोप होता दिखाई देता है। उन्होने काल खण्डो की संस्कति को अपने कथा साहित्य के अन्तर्गत प्रतिपाद्य बनाया।[5] "भारत की संस्कति में दो तत्व निहित है– समान प्रकृति और समान दृष्टिकोण, जिससे भारतीय मस्तिष्क तथा विभिन्न आन्दोलनो और संस्कृतियों का बौद्विक प्रभाव बनता हैं जिनका राष्ट्रीय मस्तिष्क के साथ सांमजस्य स्थापित हो गया है।"[5] उन्होने कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना को चित्रित करके कथाकार भारतीय संस्कृति को एक ऐसी चेतना से रूबरू कराया है जो सत्यम, शिवम, सुन्दरम पर आधारित हो। कथा की इस दृष्टि का उदधाटन हुआ है।

संस्कृति किसी देश की आत्मा है। संस्कृति से ही किसी देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, बौद्विक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। संस्कृति का गहरा संबंध आदर्शो मूल्यो एवं परम्पराओ के विकास से है। इसी विकास के फलस्वरूप सभ्यता का जन्म होता हैं। सभ्यता संस्कृति से गहरा संबंध रखते हुए भी अपने आप को संस्कृति से दूर रखती है। [6]"दिनकर जी ने बताया है कि जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है या जिस समाज में हमने जन्म लिया है, उसकी संस्कृति है। इस दृष्टि से संस्कृति वह चीज कही जा सकती है जो हमारे जीवन को व्याप्त हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में सदियों के अनुभव का हाथ है।"[6]

दयाकृष्ण जी की सांस्कृतिक चेतना व्यापक एवं विशद है जिसमें हमें गूढ दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा साहित्य विश्लेषण क्षमता के प्रत्यक्ष दर्शन होते है। उनकी सांस्कृतिक चेतना की अवधारणा भद्रजनो, परिकृष्त रूचि सम्पन्न लोगो के जीवन पद्वति तक ही सिमित नही है बल्कि इसकी अवधारणा एवं स्वरूप को कुंठित रूढिग्रस्त और रूचिविहिन जनता भी प्रभावित करती है साथ ही वे स्वस्थ सांस्कृतिक मूल्यों के साथ साथ अन्य मूल्यो की अपेक्षा नही करते। सहकार भावना में भी राष्ट्रीय चेतना की लहर देखी जा सकती है। कवि विजय सहकार भावना के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के अनेक तत्वो का विश्लेषण इन शब्दो में करते है–

[7]"जन जन जीवन में जागे सहकार भावना

मूल मंत्र भारत संस्कृति की समता ममता"[7]

सांस्कतिक चेतना के स्वरूप एवं आवधारणा को समझने के लिए भारतीय लोक संस्कृति के मूल्यो एवं परम्पराओ का वर्णन एवं विश्लेषण आवश्यक है। ऐसा इसलिए कि भारत की संस्कृति मूलतः लोक संस्कृति है। लोक संस्कृति उन लोगो की संस्कृति है जो हमेशा से हाशिए की जिन्दगी जीते रहे है। डा. विजय के कथा साहित्य में भारतीय समाज एवं संस्कृति अपनी सम्पूर्ण कलात्मकता के साथ रची बसी है। संस्कृति का विकास सांमतवाद, औद्योगिक एवं नए तकनीकी विकास जैसे विभिन्न पडावो से गुजरते हुए हुआ जिसका नैतिकता से नाता हैं। इस संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने डा. विजय को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। संस्कृति केवल परम्परागत मूल्यो की पहचान और स्वीकार ही नही है बल्कि इसमे मूल्यो की अर्थवत्ता एवं मूल्य दृष्टि की चेतना भी आती है। [8]"सांस्कृतिक चेतना की इसी आकुलता की त्रीवता और सामर्थ्य को संस्कृति की जीवन्तता का प्रमाण या माप कह सकते है।[8]

हमारा समाज मानव मूल्यो की श्रेष्ठ अनुभूतियो से संचालित होता है। संस्कृति एवं नैतिकता के पेट से जन्मा साहित्य ही मानव के क्रियाकलापो एवं उसे सत्यम, शिवम, सुन्दरम

की ओर अग्रसर करता है। जो मानव को श्रेष्ठ संस्कृति का निर्माण करने के लिए प्रेरित करती है। [9]"सांस्कृतिक चेतना और कवि की काव्य चेतना के बीच कोई गहरा विभेद या अन्तर नही हैं। सांस्कृतिक चेतना ही काव्य चेतना का अधिष्ठान है उसकी प्राण प्रतिष्ठा है। इसी हेतु से काव्य कर्म को सांस्कृतिक कर्म कहा जाता है।"[9] सांस्कृतिक चेतना के विविध आयाम होते है जो जीवन की विभिन्नताओ से जुडी हुई है तथा उनसे परिचालित होती है। वह व्यक्ति को जीवन में मार्गदर्शिका उसके कर्म की दिग्दर्शिका होती है साथ ही विश्व को आनन्द की अनुभूति प्रदान करने वाली होती है। इस प्रकार कह सकते है कि संस्कृति एक तरह से औदात्य का मानदण्ड होकर पवित्रता की लेखनी से लिखा गया पवित्र संविधान है। [10]"भारतीय संस्कृति में अद्वैतवाद के दार्शनिक सिद्वान्त को विशिष्ट महत्ता प्राप्त हैं। एक ही ब्रह्म है उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नही है वह चराचर जगत उसका रूप है"[10]

सांस्कृतिक चेतना का आधार आस्था पर टिका हुआ है इस प्रकार जो वैशिष्टय निष्क्रियता की श्रेणी में न आकर सक्रिय होते हुए समाज के क्षेत्र में जाकर अपना प्रमाण स्थापित करता है। [11]"सांस्कृतिक चेतना न केवल मार्गदर्शिका है अपितु अशिव अशुभ अभद्र पर तीखा व्यंग्य है इसलिए साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है। यह लोकपथ पर खडा सतत पथ दिखाता प्रकाशमान नंदाद्वीप है। भले ही यह क्रांति न करे लेकिन क्रांति की भूमिका तो रचता तो है।"[11] अतः संस्कृति एक आन्तरिक प्रक्रिया है जिससे हमारा जीवन अधिक परिष्कृत होकर विविध दिशाओ की ओर क्रियान्वित होता है। संस्कृति के अनेक तत्वो में सत्य, अहिसा, परोपकार, दया, ईमानदारी आदि तत्व सम्मिलित है जो जीवन को ऊचाईयो की ओर ले जाकर सर्वागीण जीवन के उद्देश्य को परिभाषित करते हैं साथ ही संस्कृति भौतिकवादी मशीनरी से परे उस दृष्टिकोण को व्यक्त करती है जीवन में ज्ञानरूपी प्रकाश तथा सौन्दर्य की उत्कंठा रखते है। व्यक्ति समाज से अलग एकाकी रहकर परिपूर्णता प्राप्त नही कर सकता। यदि वह अपने परिपूर्णता के अभियान में दूसरो को अपने साथ लेकर नही चल सकता तथा केवल नीजी विकास में ही लगा रहता है तो उसे परिपूर्णता की आंशिक उपलब्धि प्राप्त होगी। [12]"इस प्रकार जो सभ्यता है वह बाह्य विश्व का संकार है और संस्कृति आत्मा का संस्कार है या आत्मिक संस्कार की अभिव्यक्ति का माध्यम भौतिक संस्कार है उदाहरण – पत्थर से बनाई गई मूर्ति बाहरी विषय का संस्कृत रूप है अर्थात् भौतिक संस्कृति अथवा सभ्यता है। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति में शरीर आत्मा का भौतिक संबंध होते हुए भी एक दूसरे के पूरक है।"[12] संस्कृति का उदभव और विकास सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से विकास के साथ हुआ है। मानव अस्तित्व के साथ ही संस्कृति के अस्तित्व ग्रहण का आरम्भ हुआ। मानव की सार्थकता संस्कृति के कारण है। मानव और संस्कृति का उद्गम भी साथ– साथ हुआ है। संस्कृति मानव की विविध क्रिया विधियों को उत्पन्न करती है। इन्ही क्रिया विधियों द्वारा मानव बहुत सी उपलब्धिया अर्जित करता हैं क्यों कि संस्कृति का अस्तित्व के साथ जुडा हुआ है। अतः जहाँ मानव है, वही संस्कृति है।

संस्कृति न केवल अतीत की विरासत है बल्कि मानव व्यवहार के बीच प्रवाहित और सम्बद्वित करने वाली अन्तर्धारा है। संस्कृति की अवधारणा केवल सज्जनों एवं परिष्कृत जनो तक सिमित न होकर उनको भी प्रभावित करती है जो रूढिग्रस्त एवं रूचिविहिन होते है। स्वस्थ सांस्कृतिक मूल्य के साथ साथ विकृत सांस्कृतिक मूल्य भी संस्कृति को प्रभावित करते है इसलिए संस्कृति के स्वरूप एवं आवधारणा को समझने के लिए भारतीय लोक संस्कृति के मूल्यो एवं परम्पराओ का विश्लेषण करना आवश्यक है। [13]"संस्कृति के वस्तुगत पहलूओ जैसे भोजन पोशाक जीवन प्रणाली आदि पर जलवायु तथा आर्थिक साधनो का प्रभाव काफी स्पष्ट है जिसके संबंध मे बहस की जरूरत नही है। इस तथ्य से कोई इनकार नही कर सकता है भारतीय संस्कृति का वस्तुगत पहलू भी उसके प्राकृतिक और आर्थिक वातावरण के अनुसार ही निर्मित होता है।"[13]

भारतीय सांस्कृतिक चेतना धर्म के रूप में उसे केवल समाज के स्तर तक ही सिमित या संकीर्ण न होकर प्रकृति, नदी, पर्वत आदि तक जोडती हुई उसे ईश्वर की अन्तिम सत्ता तक ले जाती है इस प्रकार यह मानव के व्यक्तित्व से संस्कारित होकर जीवन के नकारात्मक समन्वय स्थापित करती है। अतः हम कह सकते है कि सांस्कृतिक चेतना के आधार वेद तथा स्मृतिया हैं। वेद हमारे प्राचीन ग्रंथ है जो आध्यात्मिक पक्ष को सांस्कृतिक चेतना के साथ प्रतिष्ठित करते है। इस प्रकार वेद और स्मति चिन्तन और अनुभव के आधार पर सांस्कृतिक चेतना के वे रूप है जिन्होने भारतीय जीवन व्यवस्था को एक रूप देकर अपना पक्ष मजबूत किया। [14]"संस्कृति का संबंध संस्कार से है जिसका अर्थ है – संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना, जातीय संस्कार ही संस्कृति है।"[14] मानव की चेतना का यह स्वरूप उसकी मूल प्रवृतियों को संस्कार देकर उनका परिष्कार, परिमार्जन करती हुई उदात्तीकरण की ओर ले जाती है जिससे उसके जीवन मूल्य व्यापक रूप से सुखी भावना की ओर मुड जाते है, इसी सोच के आधार पर व्यक्ति और समाज को रूप देने वाली रेखाओ का निर्माण होता है। किसी देश अथवा युग की सांस्कृतिक चेतना विभिन्न वस्तुओ के माध्यम से प्रकट होती है। इनमें समाज, धर्म, दर्शन, कला और साहित्य प्रमुख हैं। इस प्रकार वह मानव को संकुचित दायरे से बाहर निकालकर सामाजिक परिवेश में बिठाकर उसके व्यक्तित्व जीवन का उन्नयन करती है। [15]"सांस्कृतिक चेतना का संबंध मुख्यतया नैतिक मूल्यो से होता है । जब नैतिक मूल्यों पर अपनी अस्मिता पर राष्ट्रीय सम्मान पर देश की सीमाओ पर आक्रमण होता है तब सांस्कृतिक चेतना ही पहले सक्रिय होती है।"[15]

भारतीय संस्कृति में बाहरी तत्वो को पचा लेने की अद्वितीय शक्ति रही है। दिनकर ने भी इसी बात का समर्थन किया है। हिन्दू संस्कृति में दूसरी संस्कृति को पचा लेने की इतनी बडी शक्ति थी। वह हिन्दू संस्कृति धर्म से जुडी अनेक अछूत निम्न जातियो को आत्मसात नही कर पा रही थी। बाद में भक्ति आन्दोलन के अवर्ण संतो द्वारा अपनी सामाजिक

सांस्कृतिक असामान्य स्थिति को लेकर बडा तीखा तेवर देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप प्राचीन एवं नवीन मूल्यो के टकराहट के फलस्वरूप परिवर्तित होता रहता हैं। इस टकराहट मे कुछ नए सांस्कृतिक मूल्य भी बनते है।

इस प्रकार डा. दयाकृष्ण विजयवर्गीय की सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप और समाज एवं संस्कृति की अवधारणा पर आधारित है। उन्होने संस्कृति के नए आयाम स्थापित किए है भारतीय संस्कृति शक्ति को संजीवनी बूटी देने का सफल कार्य किया है। सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों को अभिव्यक्त कर आज के भौतिकवादी समाज को अचंभित एव ंचमकृत कर दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डा. दयाकृष्ण विजयःव्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. स. 47
2 सहस्र चन्द्र दर्शनम् स्मारिका–डा. दयाकृष्ण विजय, पृ.स. 24
3 भारत की राष्ट्रीय संस्कृति – एस. आबिद हुसैन, पृ. स. 13
4 डा.दयाकृष्ण विजयःव्यक्तित्व और कृतित्व–श्रीमती शांति उपाध्याय पृ.स.32
5 भारत की राष्ट्रीय संस्कृति– एस.आबिद हुसैन, पृ.स. 14
6 हमारी राष्ट्रीय एकता – रामधारी सिह दिनकर, पृ. स. 4
7 डा. दयाकृष्ण विजयःव्यक्तित्व और कृतित्व,–श्रीमती शांति उपाध्याय,पृ.स.47
8 राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यो में सांस्कृतिक चेतना – डा. दयाकृष्ण विजय , पृ. स. 341
9 राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यो में सांस्कृतिक चेतना – डा. दयाकृष्ण विजय पृ. स. 345
10 डा. दयाकृष्ण विजयः व्यक्तित्व और कृतित्व – श्रीमती शांति उपाध्याय पृ.स.58
11 राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना – दयाकृष्ण विजय पृ. स. 347
12 विचार और वितर्क – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ.स. 615,653
13 भारत की राष्ट्रीय संस्कृति – एस आबिद हुसैन, पृ.स. 16
14 भारतीय संस्कृति की रूपरेखा – बाबु गुलाबराय, पृ. स. 1
15 राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना – दयाकृष्ण विजय, पृ. स. 45